इकाई 8 *आमुक्तमाल्यद* तथा *रायवाचकमु* *

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 तथ्यात्मक विवेचना तथा बदलती पद्धति

8.3 इतिहास, साहित्य तथा ग्रंथ

8.4 *आमुक्तमाल्यद*

8.5 *आमुक्तमाल्यद* ग्रंथ की ऐतिहासिक महत्ता

 8.5.1 श्रीनिवास रेड्डी की *गिवर ऑफ़ द वॉर्न गार्लैंड*

 8.5.2 श्रीनिवास रेड्डी द्वारा *आमुक्तमाल्यद* का विश्लेषण

 8.5.3 कुछ उद्धरण

 8.5.4 कुछ दृष्टिकोण

8.6 *रायवाचकमु* (राजा के विवेकपूर्ण संवाद)

8.7 *रायवाचकमु* का ग्रंथीय स्वरूप

8.8 सिंहावलोकन

8.9 सारांश

8.10 शब्दावली

8.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.12 संदर्भ ग्रंथ

8.13 शैक्षणिक वीडियो

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- इन ग्रंथों और ऐतिहासिक पद्धतियों के बीच संबंध का मूल्यांकन कर पाएँगे,
- इन ग्रंथों के पाठ की शैली को ग्रहण कर पाएँगे,
- साहित्य तथा इतिहास के बीच संबंध को समझ पाएँगे,
- इन ग्रंथों को उनके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में रख पाएँगे,
- यह विश्लेषण कर पाएँगे कि किस प्रकार समय के साथ तथ्यों की विवेचना में बदलाव आता है,
- किसी ग्रंथ के ऐतिहासिक महत्व को आँकने में सक्षम हो पाएँगे,
- विजयनगर साम्राज्य के इतिहास को समझने में *आमुक्तमाल्यद* के महत्व का परीक्षण कर पाएँगे, और
- विजयनगर और *नायक*-शासकों के बीच संबंध को समझने में *रायवाचकमु* के महत्व को जान पाएँगे।

8.1 प्रस्तावना

रोमिला थापर यह प्रश्न उठाती हैं, 'क्या प्रारम्भिक भारत में ऐतिहासिक लेखन अस्तित्व में रहा है?' यह प्राचीन भारत के लिए जितना प्रासंगिक है, उतना ही मध्यकालीन भारत के लिए भी। यह सामान्य

* **प्रो. टी. के. वेंकट सुब्रह्मण्यम, इतिहास विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**

मिथ्यारोपण कि भारत में इतिहास-बोध का अभाव था, इस यूरोपीय पूर्वधारणा के कारण था कि भारत प्राच्य निरंकुशतावाद के अधीन एक गतिहीन समाज था, और कुछ हद तक इसका कारण प्रारम्भिक बौद्ध, जैन तथा पौराणिक साहित्य में प्राच्यवादी विद्वानों की रुचि भी था। हाल के वर्षों में, पश्चिमी तथा इस्लामी विश्व में भी विभिन्न प्रकार के इतिहास लेखन हमारे सम्मुख आए हैं। थापर ने यह नई अन्तर्दृष्टि दी है कि ऐतिहासिक चेतना विभिन्न प्रकार के ग्रंथों में अंतर्बद्ध थी, और लेखन की कई ऐसी विधाएँ विकसित हुईं जिनमें यह चेतना आकार ग्रहण करती थी। ऋग्वेद की ***दानस्तुति*** ऋचाओं का इस संदर्भ में उदाहरण दिया गया है, जिनमें किसी प्रमुख/मुखिया की युद्ध में सफलता का यशोगान करने वाले कवि पर प्रकट की गई अनुकम्पा का उल्लेख किया गया है।

गुप्त काल से हमें ***चरित, वंशावली*** तथा ***प्रशस्ति*** जैसी नई शैलियाँ देखने को मिलती हैं। थापर के अनुसार, ऐतिहासिक चेतना राज्य व्यवस्था की जटिलता में हो रही वृद्धि में पूर्ण रूप से सन्निहित हो गई थी तथा उसके समानांतर विकसित हुई। बौद्ध तथा जैन लेखकों के ऐतिहासिक दृष्टिकोणें के साथ ही ये प्रारम्भिक भारत में अतीत को कैसे देखा जाता था इस पर पर्याप्त सूचना उपलब्ध कराती हैं। थापर कहती हैं, 'मेरा सरोकार, इस प्रकार, इस बात से कम है कि क्या भारतीय समाज ने अतीत के संबंध में परंपरागत क़िस्म का पाठांकन करने वाला कोई विशेष ऐतिहासिक साहित्य रचा था या नहीं, बल्कि उन विभिन्न प्रकार के ग्रंथों को समझने के प्रयास से है जिनका मंतव्य अतीत का निरूपण करना था'।

वेलचेरु नारायण राव, डेविड शुलमैन तथा संजय सुब्रह्मण्यम भी इसी प्रकार के प्रश्न उठाते हैं, 'क्या अठारहवीं शताब्दी के आख़िर में इस क्षेत्र पर ब्रिटिश विजय से पूर्व दक्षिण भारत में ऐतिहासिक चेतना का अस्तित्व था?' वे यह भी स्पष्ट करते हैं कि उनकी कृति *टेक्स्चर्ज़ ऑफ़ टाइम* की परिकल्पना इस मत, कि इतिहास यहाँ के लिए एक 'अजनबी' विचार रहा है, का खंडन करने के लिए की गई थी। इस कृति के अध्याय समाज की अतीत की दृष्टि तथा समझ के संबंध में सोलहवीं, सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दी के दक्षिण भारत का अन्वेषण करते हैं। इस पुस्तक में उनका तर्क है कि तेलुगु, तमिल, संस्कृत, मराठी तथा फ़ारसी में लिखित ग्रंथ परंपरागत दृष्टि से बँधे पर्यवेक्षक को इतिहास की तरह प्रतीत नहीं हुए होंगे, किंतु ये दर्शाते हैं कि इतिहास कई तरह की शैलियों में लिखा जाता है। इस ग्रंथ में अध्ययन के लिए उन्होंने *रायवाचकमु* को लिया है, जिसे इन इतिहासकारों ने ***करणम्*** तथा *राजा* कहा है। वे दावा करते हैं कि, 'हमने तेलुगु, तमिल, मराठी तथा फ़ारसी में उपलब्ध समृद्ध सामग्री का नमूना भर उपलब्ध कराया है। हमने इन ग्रंथों को कई सम्भावित कसौटियों के आधार पर श्रेणीबद्ध करने का प्रयास भी किया है – कार्य-कारण के उनके विचार, इतिहासलेखन के उद्यम को सूत्रबद्ध करने का उनका ढंग, कभी-कभी उनकी प्रतिस्पर्धी सामयिक पद्धतियाँ, और भी अन्य तत्व।' अध्येताओं को इस पुस्तक के शीर्षक में प्रयुक्त 'टेक्सचर' (texture; बनावट/विन्यास) शब्द पर ध्यान देना चाहिए। 'टेक्स्चर', उस व्यवस्था में जिसमें इतिहास किसी एक शैली के रूप में क्रिस्टलीकृत नहीं हुआ था, शैली, रूप तथा संरचना पर किए गए पुराने आग्रह का एक विकल्प है। 'टेक्स्चर', अभिव्यक्त यथार्थ की प्रकृति के विषय में सुदृढ़ अभिकथन भी है।

8.2 तथ्यात्मक विवेचना तथा बदलती पद्धति

इतिहास के छात्र, 1960 के दशक में ऐतिहासिक पद्धति से परिचय हेतु ई. एच. कार की *व्हाट इज़ हिस्ट्री?* पढ़ते थे। अगले दो दशकों तक यही पुस्तक संदर्भ ग्रंथ बन गई, यह दर्शाने के लिए कि अब किस तरह से इतिहास भिन्न तरह से लिखा जा रहा था। 1970 तथा 1980 के दशक में, इसने 'सामाजिक' तथा 'आर्थिक' इतिहास का रूप लिया। ब्रिटिश 'सामाजिक इतिहास' ई. पी. थॉम्पसन की परिभाषा या फ्रांसीसी *अनाल्स* (*Annales*) के चारों और विकसित हुआ, जिसने समाजों के इतिहास के अध्ययन हेतु वैज्ञानिक तथा ग़ैर-विचारधारात्मक पद्धति को विकसित करने का दावा किया। ***अनाल्स*** इतिहासलेखन का प्रत्यक्षतः भारत में कोई अनुयायी नहीं था। कार ने 'व्याख्या' का अपना विचार आर. जी. कॉलिंगवुड से ग्रहण किया था तथा कॉलिंगवुड ने इसे डिल्थे तथा क्रोस जैसे दार्शनिकों से ग्रहण किया था।

इतिहास के अनुशीलन में, चूँकि हर कुछ एक 'व्याख्या' थी, अतः एक व्यक्ति की आत्मनिष्ठ समझ उतनी ही सही थी जितनी कि दूसरे की। इतिहासकारों ने व्याख्या के ऊपर तथ्य की प्राथमिकता के अपुष्ट सिद्धांतों से, और इसके उलट अपना मार्ग बनाना सीखा। यह अनुभव किया गया कि

ऐतिहासिक तथ्य (विज्ञान के तथ्यों की तरह) अपने निर्मित इतिहास के सापेक्ष थे। दूसरे शब्दों में, सभी ज्ञान सामाजिक रूप से रचा गया था, और इस अर्थ में, समाज-सापेक्ष था। ई. एच. कार ने कार्ल मैनहीम द्वारा विकसित 'ज्ञान के समाजशास्त्र' से इस विचार को लिया था।

भारत में इतिहास लेखन द्वारा पेशेवर रूप धारण करने की प्रक्रिया के तहत इतिहास लिखा जाना अभी शेष है। इतिहास लेखन के सम्पूर्ण क्षेत्र का रूपांतरण होना अभी बाक़ी है। पुरानी पद्धति पर लिखे गए इतिहास को विचारधारा को अध्ययन का विषय बनाने में कोई समस्या नहीं थी, किंतु नए इतिहास का यह आग्रह रहेगा कि वह कोई विचारधारा को नहीं रच रही है। विचारधारा इतिहास लेखन के उत्पाद से लुप्त होती जाएगी, लेकिन शायद इतिहासलेखन की पूर्वधारणा के रूप में इसके सृजन में शायद इसका पुनः उदय हो।

ये रोलाँ बार्थ थे, जिन्होंने 1967 में इतिहास लेखन के साहित्य से भिन्न होने के दावे के विरुद्ध शुरुआती संघर्ष छेड़ा। एक विवाद के रूप में इतिहास के दर्जे के संबंध में एक पूर्ण संघर्ष विकसित हुआ।

> क्या अतीत की घटनाओं का वर्णन, जिसे हमारी संस्कृति में यूनानियों के काल से ही सामान्यतः ऐतिहासिक 'विज्ञान' के अंतर्गत स्वीकृत किया गया है, 'यथार्थ' के अंतर्निहित मानक से बंधा है और 'तर्कपूर्ण' प्रवृत्ति के सिद्धांत से यह वैध ठहरता है — क्या इस प्रकार का वर्णन वास्तव में, किसी विशेष लक्षण में, किसी सुनिश्चित विशिष्ट गुण में, उस कल्पनापूर्ण वर्णन से भिन्न है जो हमें महाकाव्यों, उपन्यासों तथा नाटकों में मिलता है। **जॉन्सन, 1981**

बार्थ का कहना है कि तथ्यों को वर्णनात्मक कथानक में बुनते हुए, इतिहासकार अतीत के संबंध में मात्र सूचना उपलब्ध कराने से कुछ अधिक कर रहे थे। वास्तविक अतीत के संबंध में तथ्य इतिवृत्तों में मिल सकते हैं, इतिहासकार इन तथ्यों को पुनः प्रस्तुत नहीं करते हैं बल्कि इनको एक ऐसे आख्यान में गूँथते हैं जो अर्थपूर्ण होता है तथा अर्थों को गढ़ना पड़ता है, वे दिए गए नहीं होते हैं। अतीत का आख्यान पेश कर इतिहासकार विचारधारा के निर्माण में भागीदारी करते हैं, तथ्यों की विचारधारा पर आधारित एक व्याख्या, जो काल्पनिक होती है। यह सुझाया जा सकता है कि विज्ञान होने का भ्रम त्याग देना चाहिए तथा यह स्वीकारना चाहिए कि इतिहासकार, एक कवि या उपन्यासकार की तरह भाषा के शिल्प से संबंध रखता है। 1973 में हेडेन व्हाइट ने ***मेटाहिस्ट्री*** तथा इसके बाद *ट्रापिक्स ऑफ़ डिस्कोर्स* का प्रकाशन किया, जिसमें उन्होंने तर्क दिया कि ऐतिहासिक लेखन यथार्थ का प्रभाव अतीत के तथ्यों को सामने लाकर पैदा नहीं करते हैं बल्कि साहित्यिक लेखन में लम्बे समय से प्रचलित शब्द-चमत्कार के विधान का उपयोग कर करते हैं।

इतिहास के अनुशीलन की इस बदलती प्रकृति की पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए, अतीत की विवादास्पद प्रकृति के कारणों तथा विभिन्न प्रकार से किए गए अतीत के उपयोग को आसानी से समझा जा सकता है। फ़रिश्ता की *तारीख़* को 'मुस्लिम काल' के दो अलहदा विवरणों को लिखने हेतु प्रयोग में लाया जा सकता है। आर्य/द्राविड़ भाषायी विभाजन का सिद्धांत नस्लीय द्विभाजन में रूपांतरित किया जा रहा है। अतीत स्वयं को बहुविध रूपों में अभिव्यक्त करने हेतु प्रस्तुत करता है, और सामाजिक तथा राजनीतिक पहचानों को गढ़ने हेतु उपयोगी संसाधन बन चुका है। ये सभी अतीत का निर्धारण करने में इतिहासकार की भूमिका के विषय में प्रश्न खड़ा करते हैं।

8.3 इतिहास, साहित्य तथा ग्रंथ

इतिहास लेखन की परम्परा को हेरोडोटस तथा थ्यूसीडाइडीज़ के क्लास्कीय युग तक पीछे ले जाया जा सकता है। मध्यकाल में इतिहास ऐसे इतिवृत्तों से भरा था जो नातेदारी के संबंधों, ईसाई धर्म के संघर्षों तथा सफलताओं और सामंतों तथा राजाओं के बीच संघर्ष का वर्णन करते थे। संतों तथा शहीदों के प्रशस्तिपूर्ण जीवन-चरित भी महत्वपूर्ण थे। यह अठारहवीं शताब्दी में जाकर ही हुआ कि इतिहास एक अकादमिक विषय के रूप में उभरने लगा। इतिहासकार प्राथमिक स्रोतों के अध्ययन के प्रति जागरूक होने लगे। उन्नीसवीं शताब्दी में, इतिहास लेखन मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हुआ। यह विषय *अनाल्स* अर्थात् बृहद् इतिहास की धारणा से और परिपक्व हुआ। इसकी आधी शताब्दी बाद, 'नवीन सामाजिक इतिहास', 'नवीन आर्थिक इतिहास' तथा 'नवीन राजनीतिक इतिहास' अस्तित्व में आए। 1970 के दशक से, उत्तर-आधुनिकतावाद के आगमन के बाद 'नव-नवीन इतिहासों' का उदय

हुआ। इस प्रवृत्ति ने क्लिफ़र्ड गीर्ट्ज़, रॉबर्ट डरंटोन तथा स्टीफ़न ग्रीनब्लाट के कार्यों को प्रभावित किया।

'नवीन सांस्कृतिक इतिहास' के इतिहासकारों ने इस पर बल दिया है कि सांस्कृतिक विश्लेषण में 'ससंदर्भ विवरण' शामिल होता है, और लघु किंतु सघन विन्यास वाले तथ्यों से यह पद्धति व्यापक निष्कर्ष निकालने का प्रयास करती है। दूसरे शब्दों में, 'अर्थों की कोई विशाल भूमि खोजने तथा इसके आकारहीन भू-दृश्यों का नक़्शा तैयार करने पर दिए गए आवश्यकता से अधिक ध्यान के बजाय छोटी, वास्तविक समय में घटित घटनाओं पर व्याख्यापरक तथा नृशास्त्रीय ढंग से ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है' (क्लिफ़र्ड गीर्ट्ज़)। गीर्ट्ज़ को जो आकर्षित करता है वह बुनावट है, न कि बुने जाने की प्रक्रिया, संस्कृति है न कि इतिहास, *रचना* है न कि रचनाबद्ध किए जाने की प्रक्रिया (लिन हंट)।

इस 'नई संस्कृति' को एक पाठ/रचना (text) की तरह देखा गया और इसकी व्याख्या पर ज़ोर दिया गया। साहित्यिक ग्रंथों की व्याख्या के साथ ही सांस्कृतिक अध्ययन पर दिए जा रहे ज़ोर को साथ में 'नवीन इतिहासवाद' के शीर्षक के अधीन रखा गया है। इस शब्द-व्यंजक का प्रथम उपयोग स्टीफ़न ग्रीनब्लाट द्वारा किया गया था जिन्होंने पुनर्जागरण कालीन निबंधों का एक संकलन इस शीर्षक के साथ सम्पादित किया था। इस प्रवृत्ति के अन्य विद्वान लुई मांट्रोज़ ने यह सुझाव दिया कि इस परियोजना के माध्यम से यह 'अंतर-ग्रंथात्मकता की धुरी' सांस्कृतिक व्यवस्था के एक पाठ में बदल जाती है। किसी 'स्वतंत्र साहित्यिक इतिहास' में रचे गए पाठ को एक 'सांस्कृतिक व्यवस्था' द्वारा गढ़े गए 'पाठ' के रूप में लिए जाने की आवश्यकता होती है। नवीन इतिहासवाद के अंतर्गत, साहित्य तथा 'सांस्कृतिक व्यवस्था' के बीच समकालिक संबंध, उनके बीच 'समय के अनुरूप हुए परिवर्तन' के पहलू की अपेक्षा अधिक प्राथमिक हो गए।

ग्रंथों को अक्सर दीर्घ स्वरूप के लेखन के रूप में देखा जाता है। विभिन्न प्रकार के ग्रंथ, अपने साहित्यिक गुणों के आधार पर ऐतिहासिक रूप से अपनी शैली को ग्रहण करते हैं। 'शैली' को 'ग्रंथीय कौशल के आधारतल' के रूप में देखा जाता है या अधिक परंपरागत रूप में ग्रंथीय श्रेणी के एक आधार के रूप में। आर. वोडक कई प्रकार के ग्रंथों को सूचीबद्ध करते हैं जैसे आख्यानात्मक ग्रंथ (कथा, कहानियाँ), तर्क-विवेचना के ग्रंथ (व्याख्यात्मक, वैज्ञानिक आलेख), विवरणात्मक ग्रंथ (वर्णन, चित्रण, इत्यादि) और निर्देशात्मक ग्रंथ (पाठ्य पुस्तकें)। प्रत्येक प्रकार का लेखन ऐतिहासिक अन्वेषण का विषय हो सकता है, एक श्रेणी के रूप में या पृथक् रूप से। सबका अपना एक इतिहास होता है वैसे ही जैसे उनके लेखकों, पाठकों तथा इतिहासकारों का होता है। पाठात्मक अध्ययन (textual studies) की स्वीकृति इतिहासकारों के बीच बढ़ती ही जा रही है। साहित्यिक उपागमों ने समकालीन इतिहास अनुशीलन को आकार दिया है, इस पर बारम्बार दिए गए बल का परिणाम साहित्य तथा इतिहास के संबंध की स्थापना में निकला है। साहित्य, इतिहास के उपयोगी स्रोत के रूप में काम आया है, किंतु इतिहास का लेखन उपन्यास तथा नाटकों के लेखन कार्य से बहुत भिन्न है। साहित्य निश्चित रूप से ऐतिहासिक परिवर्तनों तक पहुँच सम्भव बनाता है। इतिहासकार का कार्य अतीत का पुनर्निर्माण है तथा इसे सुतार्किक तरीके से संदर्भ प्रदान करना है। एक इतिहासकार को निश्चित रूप से किसी ग्रंथ की पृष्ठभूमि, अपने पाठकों के लिए उसके निहितार्थ का अध्ययन करना होगा और यह निर्धारित करना होगा कि क्या यह ग्रंथ बदलते समयों के लिए भी कोई महत्व धारण करता है।

इस इकाई में, हम दो तेलुगु ग्रंथों, *आमुक्तमाल्यद* तथा *रायवाचकमु* का अध्ययन करेंगे, इनमें से पहले ग्रंथ में हम लौकिक तथा दैवीय के बीच संबंध का अन्वेषण करेंगे, तथा दूसरे में मदुरै के प्रारम्भिक ***नायक*** शासकों की दुनिया के बारे में जानेंगे।

बोध प्रश्न-1

1) 'क्या प्रारम्भिक भारत में ऐतिहासिक लेखन का अस्तित्व था?' टिप्पणी कीजिए।

....

....

....

2) भारत में ऐतिहासिक चेतना की उपस्थिति के संबंध में रोमिला थापर का मत बताइए।

....

....

....

3) दक्षिण भारत में ऐतिहासिक चेतना की उपस्थिति के विचार को स्पष्ट कीजिए जैसा कि *टेक्सचर्ज़ ऑफ़ टाइम* में इस पर चर्चा की गई है।

....

....

....

4) समय के साथ-साथ इतिहास के विचार की बदलती प्रकृति पर चर्चा कीजिए।

....

....

....

8.4 *आमुक्तमाल्यद*

तेलुगु साहित्य नन्नया (ग्यारहवीं शताब्दी) के साथ शुरू होता है जिसने काव्य तथा काव्य शैली के रूप की स्थापना की थी। तेलुगु भाषा इससे भी प्राचीनतर है जिसकी पुष्टि स्थानों के नामों तथा अभिलेखों से भी होती है। पद्य तथा साहित्यिक शैली के उद्‌भव को नौवीं शताब्दी तक पीछे ले जाया जा सकता है। तेलुगु संस्कृति के मुख्य अभिरूपों की स्थापना तेरहवीं शताब्दी के काकतीय शासकों के युग में हुई थी। तेरहवीं शताब्दी में तिक्कण तथा चौदहवीं शताब्दी में श्रीनाथ महत्वपूर्ण कवि थे जिन्होंने तेलुगु परम्परा में समुदाय, परम्परा और आंध्र क्षेत्र के बीच संबंध को जोड़ा। ऐतिहासिक आंध्र क्षेत्र की कोई स्पष्ट सीमाएँ नहीं थीं, बल्कि इसमें कई क्षेत्र थे जैसे तटीय तथा डेल्टा क्षेत्र। प्रारंभिक सोलहवीं शताब्दी में कृष्णदेवराय विजयनगर से कृष्णा ज़िले के श्रीकाकुलम में आए। यहाँ भगवान को आंध्र महाविष्णु (तेनुगु राय) पुकारा जाता था जिसका उल्लेख *आमुक्तमाल्यद* में भी है (1.11)।

नन्नया ने तेलुगु में *पुराण* जैसी रचनाओं तथा *महाभारत* महाकाव्य की शुरुआत की। पौराणिक काव्य ने बाद में कृष्णदेवराय (1509-29) के अधीन ***प्रबंध-काव्य*** के ग्रंथों का मार्ग प्रशस्त किया। नन्नया ने वास्तविक श्रोता के सम्मुख वाचक और श्रोता की उपस्थिति (संजय द्वारा धृतराष्ट्र को या *सूत*-वाचक) की ***चम्पू*** शैली को अपनाया। नन्नया का संबंध डेल्टा क्षेत्र से था तो तिक्कण का नेल्लुरु से। उसने तेलुगु लेखन के संसार का विस्तार ***धर्मशास्त्र***, व्याकरण ग्रंथों तथा ***कथा* परम्परा** के क्षेत्र में किया। नन्ने चोड ***मार्गी-देसी* शैली** का प्रतिनिधित्व करता है और उसने *वास्तु-कविता* के रूप में इसका तेलुगुकरण किया। चौदहवीं शताब्दी तक हमारे सम्मुख एक परिपक्व परम्परा थी जिसका विविध स्वरूपों में कई प्रकार से श्रीनाथ प्रतिनिधित्व करता था। सोलहवीं शताब्दी के शुरुआती दशकों में तेलुगु काव्य ने शास्त्रीय दर्जा हासिल कर लिया। कृष्णदेवराय (1509-1529) स्वयं एक कवि-राजा था तथा उसके सांस्कृतिक दरबार में अल्लसानी पेड्डन, नंदी तिम्मना, रामभद्रकवि, धुर्जती, मल्लन, पिंगली सुरन्ना, रामराजा भूषण और तेनाली रामकृष्ण कवि जैसे लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान शामिल थे।

तेलुगु साहित्य के विकास में 27-1-1519 सी ई की तिथि परिवर्तन सूचक मानी जाती है क्योंकि यह विश्वास किया जाता है कि इस दिन कृष्णदेवराय अपने कलिंग अभियान के दौरान विजयावती (बेजवाड़ा) में रुका था और उसने आंध्र मधुसूदन (आंध्र विष्णु) की आराधना की थी। उसने इस दिन एकादशी का व्रत भी रखा, भगवान उसके स्वप्न में आए तथा उसे तेलुगु में अंडाल (पेरियअलवार की पुत्री) की कथा लिखने का आदेश दिया। इस कृति को भगवान वेंकटेश्वर को समर्पित किया जाना था, अतः कृष्णदेव राय ने अपनी इस कृति *आमुक्तमाल्यद* की रचना की जिसे कृष्णदेव राय के शासन के पुनर्निर्माण के लिए विश्वसनीय तथा समकालीन कृति के रूप में देखना चाहिए।

परंपराओं के साथ ही कुछ कवि तथा भाष्यकार इसे अल्लसानी पेड्डना की रचना मानते हैं। वी. प्रभाकर शास्त्री ने इस मत के पक्ष में मजबूत तर्क देते हुए आंध्र पत्रिका में लिखा था:

1) *मदालसाचरित, सत्यवधुपरिणियम्, सकलपार्थ सार संग्रेहम्* तथा *रसमंजरी* जैसी संस्कृत रचनाओं

का इसकी प्रस्तावना में उल्लेख है तथा जिनकी रचना का श्रेय कृष्णदेवराय को दिया गया है, ये उपलब्ध नहीं हैं।

2) इनमें से कुछ ग्रंथों, जैसे *रसमंजरी* तथा *सत्यवधुपरिणयम्*, की रचना का श्रेय अन्यत्र किसी और को दिया गया है।

3) *कृष्णराजविजयम्* या *रायवाचकामु* में उसे एक महान् योद्धा, दानी तथा संरक्षणदाता बताया गया है किंतु एक लेखक नहीं।

4) तेनाली रामकृष्ण कवि ने भी अपनी *पंडितआराध्यचरित* में इसका श्रेय पेड्डना को दिया है।

लेकिन, इस कृति की मूल अवधारणा, रचना विधान, प्रयुक्त सामग्री, शैली, माध्यम, जिसमें इसे अभिव्यक्त किया गया है, परिवेश तथा कथानक, ये सभी पेड्डना के बजाय किसी अन्य रचयिता की ओर ही संकेत करते हैं। पेड्डना जहाँ अतिशयोक्ति का प्रयोग करने में मुखर है, वहीं *आमुक्तमाल्यद* तथ्यपरक शैली का प्रयोग करती है। इसके अतिरिक्त, प्रचलित रीति से भिन्न शैली तथा तेलुगु मुहावरों का अभाव इसे *प्रबंध* काव्य के जगत में विशिष्ट स्थान प्रदान करता है। वैष्णव दर्शन की महानता भी इस कृति में व्यापक रूप से बखान की गई है। उपर्युक्त पर्यवेक्षण पर विचार करते हुए, तेलुगु भाषा के प्रति उसके विशेष लगाव (सभी ***देसभाषाओं*** में श्रेष्ठ) को देखते हुए कृष्णदेवराय को इसका लेखक स्वीकारा जा सकता है।

8.5 *आमुक्तमाल्यदा* ग्रंथ की ऐतिहासिक महत्ता

1) यह कृष्णदेवराय के अभियानों के विषय में जानकारी देता है। इसकी प्रस्तावना राजा की वंशावली चंद्रवंशी के रूप में उपलब्ध कराती है।

2) इसके छः सर्गों के अंत में दी गई छः पुष्पिकाएँ हमें उसकी विजयों के विषय में जानकारी देती हैं:

   a) I – उदयगिरी पर विजय
   b) II – कोंडाविडु पर विजय
   c) III – कोंडापल्ली पर विजय
   d) IV – सिमाचलम् में ईश्वर की आराधना तथा पोतनुरू में स्तम्भ की स्थापना
   e) V – कुंबनी के दुर्ग का विध्वंस
   f) VI – नैरमन का युद्ध

इस ग्रंथ में दिए गए स्थानों के नामों की पुष्टि में समस्या है, जब अभिलेखीय साक्ष्यों से इनका मिलान किया जाता है।

3) कुछ सीमा तक, हम इस ग्रंथ में वर्णित राजव्यवस्था की परिपुष्टि यूरोपीय यात्रियों के वृत्तांत में पाते हैं। सामान्यतः यह माना जाता है कि *आमुक्तमाल्यद* ऐसा साहित्यिक साक्ष्य उपलब्ध कराती है जिसका समर्थन अभिलेखों से तो नहीं होता है, किंतु नूनिज़ के विवरण इसकी महत्ता में वृद्धि करते हैं।

8.5.1 श्रीनिवास रेड्डी की *गिवर ऑफ़ द वॉर्न गार्लैंड*

श्रीनिवास रेड्डी की कृति *गिवर ऑफ़ द वॉर्न गार्लैंड* (पेंग्विन क्लासिक्स, 2010) के आमुख में जॉर्ज एल. हार्ट कहते हैं, 'यह न केवल धार्मिक तथा भावनात्मक गहरायी है जो इस ग्रंथ को एक महान् काव्य बनाती है, जब हम अंडाल और भगवान विष्णु के प्रति उसके समर्पण को पढ़ते हैं, हम उस दुनिया को महसूस करते हैं जिन बहुविध तथा विभिन्न आयामों में कृष्णदेवराय ने इसे देखा था ... यह एक संत की सामान्य कथा को साहित्य की एक महान् कृति में बदल देता है।'

कृष्णदेवराय को *साहिति-समरांगण-सार्व-भम्म* अर्थात् युद्ध तथा साहित्य के मैदान में श्रेष्ठ सम्राट के रूप में जाना जाता था। वह दोनों विधाओं में प्रवीण था तथा उसने स्वयं के भीतर और अपने दरबार में दक्षिण भारतीय संप्रभुता तथा संस्कृति का परिष्कार किया। उसकी राजधानी वैभव तथा संस्कृति

का स्थल थी, तेलुगु साहित्य का तथाकथित स्वर्ण युग कृष्णदेवराय (1509-1529) के काल में अपने चरम को प्राप्त हुआ।

तेलुगु साहित्यिक इतिहास में *आमुक्तमाल्यद* एक युगांतरकारी कृति है। अपने समय के बहुत से लेखकों के विपरीत, जो संस्कृत *पुराणों* से प्रेरणा लेते थे, यह कवि-राजा दक्षिण की तमिल संत अंडाल से प्रेरित था। वह भक्ति के भाव में गहरे में डूबी हुई थीं और उन्होंने विष्णु को भक्तिपूर्ण गीतों का समर्पण किया। ये भक्ति-गीत भक्ति परम्परा की आरंभिक अभिव्यक्तियों में शामिल हैं, धार्मिक समर्पण की एक शक्तिशाली भावना जिसने जाति-आधारित ब्राह्मणीय सिद्धांतों और अनुष्ठानों को नकार दिया, ईश्वर के प्रति अधिक प्रत्यक्ष और व्यक्तिगत प्रेम का उपदेश देने के लिए। सातवीं शताब्दी तक, उत्तर भारत से आयातित समृद्ध दार्शनिक तथा मिथक-शास्त्रीय तत्वों को दक्षिण भारतीय लोकाचार में नए सिरे से ढाल लिया गया था। यह रामानुज के अधीन *विशिष्टअद्वैत* के नए दार्शनिक मत सम्प्रदाय के रूप में विकसित हुआ। कृष्णदेवराय को विजयनगर के ***तत आचार्यों*** द्वारा श्री वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित किया गया और वह अपने द्वारा चुने गए भगवान तिरुपति वेंकटेश्वर के प्रति अगाध श्रद्धा रखता था। उसकी *आमुक्तमाल्यद* एक भक्ति-काव्य थी, एक संकर-शैली जिसने संस्कृत के आलंकारिक काव्य और दक्षिण भारतीय भक्ति के धार्मिक रस को साथ में प्रवाहमान बनाए रखा। यह उन साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक धाराओं को एकीकृत करता है जो कृष्णदेवराय के साम्राज्य में प्रवाहित थीं।

8.5.2 श्रीनिवास रेड्डी द्वारा *आमुक्तामाल्यदा* का विश्लेषण

कथा तथा चयन

यह कृति कवि-राजा के इष्ट देवता तिरुपति के श्री वेंकटेश्वर के आह्वान से शुरू होती है, जिसके बाद एक स्वप्न का वर्णन है जिसने तेलुगु में इस कृति की रचना करने की प्रेरणा दी थी। अगले 32 पद वंश-स्तुति या वंश की प्रशंसा से संबंधित हैं। यह खंड पेड्डुना के *मनुचरितम्* से लिया गया है।

अध्याय 1, *प्रथम-आस्वासम,* श्रीविल्लीपुत्तुर का वर्णन करता है। इसका अंत विष्णुचित्त या पेरियअलवार के परिचय के साथ होता है। इस अध्याय में हमें चरागाह क्षेत्र का वर्णन मिलता है। अगला अध्याय पांड्यों की राजधानी मदुरै की ओर मुड़ जाता है। इस वर्णन को ग्रीष्म-ऋतु वर्णन या गर्मी के मौसम के वर्णन के रूप में जाना जाता है। मोक्ष या आध्यात्मिक मुक्ति पाने के श्रेष्ठ मार्गों पर चर्चा तथा परिसंवाद इस अध्याय की विशेष पहचान है। तीसरा अध्याय पांड्य राजदरबार में विष्णुचित्त की शास्त्रार्थ की दक्षता से शुरू होता है। चौथा अध्याय इनमें सबसे विस्तृत *आस्वासम्* है जिसमें विष्णुचित्त अंततः पांड्य राजा को श्री वैष्णव मत का अनुयायी बनाने में सफल होता है। उसके *दास-अवतार-स्तोत्रम्* का यहाँ उल्लेख किया गया है, इस अध्याय का अंत *राज-धर्म* या नीतिपूर्ण शासन पर 82 श्लोकों के साथ होता है। अध्याय पाँच हमारा परिचय गोडा देवी से कराता है जो विष्णुचित्त की दत्तक पुत्री हैं। इस अध्याय का अंत बसंत के आगमन के साथ होता है। छठा अध्याय इस दृश्य को श्रीरंगम् में ले जाता है। भगवान विष्णु, विष्णुचित्त को अपनी पुत्री का विवाह भगवान रंगनाथ से करने की सलाह देते हैं। इसके पश्चात् आता है एक महत्वपूर्ण *दिव्यदेशम्* और अंडाल के रंगनाथ से विवाह का वर्णन।

8.5.3 कुछ उद्धरण

I. ***स्वप्न***

आंध्र विष्णु मेरे स्वप्न में प्रकट हुए और कहाः

I.14 'अगर तुम पूछो, आपका कौन सा रूप? जिसे मुझे याद रखना चाहिए?'
सुनो, क्योंकि मैं तुम्हें बताना चाहूँगा
फिर से वह कहानी श्रीरंगम् में मेरे विवाह की
क्योंकि मैं हूँ तेलुगु राजा और आप हो एक कन्नड़ राजा
बहुत पहले अनिच्छा से स्वीकारी थी मैंने एक व्यक्ति द्वारा दी गई कंठमाल,

इस पाप से मुक्ति के लिए अपनी प्रिया से उपहार पाने के आनंद का करो बखान
कहो मुझसे मेरी प्रिया *आमुक्तमाल्यद*, 'अपने कंठ से उतारी माला देने वाली' कथा।

II- I-15 तेलुगु क्यों?
'यदि तुम पूछो, ''तेलुगु क्यों''?
ऐसा है क्योंकि यह है एक तेलुगु देश और मैं हूँ एक तेलुगु राजा
तेलुगु अपने में है एक श्रेष्ठ भाषा
उन सब राजाओं से बात करने के बाद, जो करते हैं तुम्हारी सेवा, क्या तुमने नहीं किया यह अनुभव सभी प्रांत-प्रांतरों की भाषाओं में तेलुगु है सर्वश्रेष्ठ'।

III. 'बुद्धिसंपन्न मनुज, जाओ आज, शीघ्र, मधमा के पास, उन सभी दंभ से अंधे हुए विद्वानों का हराने के लिए जो पांड्य दरबार में डींगें हाँक रहे हैं। करो मेरी शक्ति का उद्घोष, और ग्रहण करो उपहार, राजा जो हो जाएगा हतप्रभ इससे, करो उस पर दया और जगाओ मेरे प्रति प्रेम उसमें।'

8.5.4 कुछ दृष्टिकोण

हम वेल्चेरु नारायण राव तथा डेविड शुलमैन द्वारा किए गए अवलोकनों का उल्लेख करना चाहेंगे, जो इस ग्रंथ के अध्ययन का दूसरा पहलू सामने लाते हैं।

> इस भाषायी तथा काव्यात्मक दायरे के भीतर हम राजत्व तथा राजनीतिक व्यवस्था के लिए एक बिल्कुल नया आधार निर्मित करने का प्रयत्न देख सकते हैं। स्वयं कृष्णदेवराय की तरह ही (जैसा कि मध्यकालीन परम्परा आग्रह करती है), उनकी कविता के राजसी नायक, एक तरह से, संन्यासी राजा हैं, जिन्होंने अनिच्छा से ही शासन करना स्वीकारा है, लेकिन एक बार राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण होने के बाद वे प्रभावी, शक्तिसंपन्न तथा बुद्धिमान सिद्ध हुए हैं। राजनीति की यह नई समझ, जो राजा के समग्र, एकरूप आत्म के भीतर राजत्व के अंतर्निहित द्वंदों तथा तनावों को समाहित करती है, साम्राज्य की राजधानी में प्रारंभिक सोलहवीं शताब्दी की मनो-सामाजिक दुनिया की अधिक सामान्य नवाचारी व्याख्या का अंग है।

विजयनगर-संबंधी अध्ययनों से जुड़े नए शोध कार्य लगभग 1346-1565 के काल में संरक्षण की गतिविधियों पर केंद्रित हैं तथा उनका अन्वेषण करते हैं।

विजयनगर की सैन्य गतिविधियों ने पूर्ववर्ती विद्वानों को यह तर्क प्रस्तुत करने के प्रति आकर्षित किया था कि यह दक्षिण में इस्लाम के और अधिक विस्तार को रोकने के लिए रक्षात्मक कवच था। आधुनिक विद्वानों ने विजयनगर दरबार द्वारा विभिन्न स्रोतों से सांस्कृतिक तत्वों को ग्रहण करने के विचार पर ध्यान दिया है। क्या विजयनगर राज्य ने संरक्षण प्रदान करने में चयनात्मक रवैया अपनाया था? क्या विजयनगर द्वारा प्रदत्त संरक्षण में अवसरवादी लचीलापन था? ये मौलिक सवाल हैं तथा ग्रंथों का गहन अध्ययन ही इनका उत्तर दे सकता है।

उदाहरण के लिए, *पोलेमिक्स* एंड *पेट्रोनेज इन द सिटी ऑफ़ विक्ट्री* (2016, कैलिफ़ोर्निया प्रेस) में वालोविय स्टोकर उन तरीकों का अन्वेषण करते हैं, जिनके माध्यम से विजयनगर की संरक्षण-संबंधी गतिविधियों ने हिंदू संप्रदायों की पहचानों की अभिव्यक्ति को प्रभावित किया। स्टोकर यह तर्क देते हैं कि विजयनगर दरबार हिंदू धार्मिक संस्थाओं को संरक्षण प्रदान करने में चयनात्मक रवैया अपनाता था तथा इसका मंतव्य हमेशा धार्मिक नहीं होता था। विजयनगर राज्य द्वारा संरक्षण देने में अवसरवादी लचीलेपन ने हिंदू संप्रदायों के प्रमुखों को बौद्धिक परियोजनाओं, अंतर-सांप्रदायिक सहयोग तथा प्रतिस्पर्धा में शामिल होने को प्रेरित किया।

बोध प्रश्न-2

1) तेलुगु साहित्य तथा भाषा के विकास में आरंभिक तेलुगु लेखकों के योगदान का उल्लेख कीजिए।

....
....
....
....

2) क्या आप इससे सहमत हैं कि कृष्णदेवराय के अधीन तेलुगु भाषा शास्त्रीय युग में प्रवेश कर चुकी थी?

....

....

....

3) *आमुक्तमाल्यद* के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

4) श्रीनिवास रेड्डी द्वारा किए गए *आमुक्तमाल्यद* के विश्लेषण का परीक्षण कीजिए।

....

....

....

5) दक्षिण भारत में ऐतिहासिक चेतना की उपस्थिति पर नारायण राव, डेविड शुलमैन तथा संजय सुब्रह्मण्यम का क्या तर्क है?

....

....

....

8.6 *रायवाचकमु* (राजा के विवेकपूर्ण संवाद)

इतिहासकार समूह, जिसमें वेल्चेरू नारायण राव, डेविड शुलमैन और संजय सुब्रह्मण्यम शामिल थे, ने दक्षिण भारत में ब्रिटिश अधिग्रहण से पूर्व इतिहास और ऐतिहासिक चेतना के अस्तित्व का विषय उठाया है। 2001 में अपनी कृति *टेक्स्चर्ज़ ऑफ टाइम, वर्किंग हिस्ट्री ऑफ साउथ इंडिया 1600-1800* में उन्होंने यह तर्क दिया है कि तेलुगु, तमिल, संस्कृत, मराठी तथा फ़ारसी में रचे गए ग्रंथ कई रूपों में थे, जैसे लोक-काव्य से लेकर दरबारी काव्य तक, और गद्यात्मक विवरण भी। उन्होंने यह दर्शाना चाहा है कि दक्षिण भारत में इतिहास कई शैलियों में लिखा गया था और इतिहास लेखन किसी औपचारिक विशेषता या शैली से जुड़ा हुआ नहीं था। पश्चिमी यूरोप में इतिहास अपेक्षतः एक सुनिश्चित और स्थायी शैली के रूप में उभरा था। 19वीं शताब्दी के प्रत्यक्षवाद के पहले से ही इस शैली की स्पष्ट औपचारिक विशेषताएँ थीं, एक विशेष ढाँचा और अपेक्षाकृतः एक स्पष्ट पद्धति। यह पद्धति थी स्रोत सामग्री को एकत्र करना, उनकी विश्वसनीयता के आधार पर उन्हें अलग करना और इन्हें गद्य विवरणों के रूप में प्रस्तुत करना। हीगल के बाद से गद्य का चयन अधिक सुव्यवस्थित हो गया। इस लेखक-समूह ने इस ओर संकेत किया है कि दक्षिण भारत में इतिहास स्वयं में कोई एक विधा नहीं थी और इतिहास लेखन के लिए कोई एकल शैली प्रचलित नहीं थी। विद्वानों और इतिहासकारों ने आमतौर पर बिना किसी विश्लेषण के एक ही पैटर्न का अनुसरण करते हुए, पुराने ऐतिहासिक ग्रंथों को कथाओं तथा साहित्यिक मिश्रण के रूप में ग्रहण करते हुए इस्तेमाल किया।

टेक्स्चर्ज़ ऑफ़ टाइम का लेखक-समूह यह भी तर्क देता है कि यदि *पुराण* प्रमुख साहित्यिक विधा के रूप में प्रचलित है तो इतिहास भी *पुराण* के रूप में लिखा जाएगा, यदि काव्य का प्रचलन प्रभावी है तो हमें इतिहास काव्य के रूप में मिलेगा, यदि गद्यात्मक इतिवृत्तांत प्रचलन में हैं तो वह भी इतिहास लेखन में प्रमुखता पाते दिखेंगे। दूसरे शब्दों में, किसी भी शैली में हमें इतिहास तथा ग़ैर-इतिहासात्मक लेखन देखने को मिलता है – और लक्षण, लय-परिवर्तन, वाक्य-विन्यास, शब्द-योजना, सुस्पष्टता, भावों की सघनता तथा तीव्रता, संरचनागत अंतराल तथा मौन, छंद-युक्तियाँ, ध्वन्यात्मक-सौंदर्य के विभिन्न गुण तथा किसी अभिकथन में समय के अनुरूप प्रकट व्यंजना हमें इतिहास को ग़ैर-इतिहासात्मक लेखन से अलग करने में सहायता करता है। नियमित तौर पर किसी परम्परा के भीतर पसंद की जाने वाली शैली में बदलाव आता रहता है, जिसके अनुरूप ही इतिहासलेखन के माध्यम में भी परिवर्तन होता है। दूसरे शब्दों में, आसानी से 'अति गंभीर इतिहासलेखन' से 'ऐतिहासिक उपन्यास' और इससे एक 'उपन्यास-लेखन' की ओर जाया जा सकता है, यद्यपि तीनों ही गद्यात्मक वर्णन विधाएँ हैं और

अपने रूप-विधान तथा औपचारिक शैलियों को लेकर एक-दूसरे के काफ़ी निकट हैं। उन्होंने तेलुगु में एक निश्चित प्रकार के ***करणम्*** इतिहासलेखन का भी उल्लेख किया है। इस लेखक-वृंद के अनुसार, सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के राजनीतिक इतिहास पर केंद्रित ग्रंथ व्यवहारिक अनुभव तथा परम्परा से प्राप्त ज्ञान के भंडार रहे हैं। वे आगे कहते हैं, 'पूर्व-औपनिवेशिक भारत के इतिहासलेखन में अक्सर स्वीकार किया गया, नगरीय तथा ग्रामीण क्षेत्र के बीच स्थापित उग्र प्रतिरोध कभी-कभी विजयनगर, मदुरै और तंजावुर, तथा छोटे से गाँव के एक आम किसान के घर के बीच मौजूद जटिल पदानुक्रम को धुंधला बना देता है'। इस प्रकार के ग्रंथों में एक तरह की विलक्षणता है और यह *करणम्* के व्यक्तित्व के सामाजिक परिवेश पर निर्भर था।

फिलिप वैगनर अपने अनुवाद में यह तर्क देते हैं कि *रायवाचकमु* सत्रहवीं शताब्दी से संबंधित है, हालाँकि यह प्रारंभिक सोलहवीं शताब्दी की घटनाओं का वर्णन करता है। *रायवाचकमु* में इसकी तिथि को लेकर कोई आंतरिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। किंतु इसे *करणम्* गद्य शैली की विलक्षणता के साथ लिखा गया है और यह *प्रतापरुद्रचरितम्* जैसी आरंभिक सामग्रियों से ग्रहण करता है।

यह भी तर्क दिया गया है कि सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी में एक विशेष प्रकार की दक्षिण भारतीय *करणम्* संस्कृति अस्तित्व में रही है, एक नए प्रकार के कुलीन जो दस्तावेजों के लिखित प्रसार हेतु समर्पित थे और सत्ता, राजनीति, तथा राज्य के स्वयं की मानकों पर किए गए विश्लेषण के आधार पर ऐतिहासिक स्मृति को व्यवस्थित करने के लिए उत्सुक थे, जिसने अंततः उन्हें उभरती हुई *नायक* व्यवस्था के भीतर एक सुनिश्चित स्थान प्रदान किया।

यह ग्रंथ गद्यात्मक लेखन की ऐसी संस्कृति पर प्रकाश डालते हैं, जिसका मंतव्य मात्र पाठबद्ध करने या लेखबद्ध करने के बजाय संवाद या संचार करना था। यह कोई एकल शैली नहीं है और किसी समरूप शैली या विधान के प्रति प्रतिबद्ध नहीं थी।

यह स्वतंत्र रूप से उस समय अस्तित्व में रही पद्धतियों को ग्रहण करती है। न तो इन कृतियों को किसी के निर्देशन पर लिखा गया था और न हीं ये ईश्वर को अर्पित की गई थी। *रायवाचकमु* स्वतंत्र रूप से विजयनगर से ओडिशा और ओडिशा से दिल्ली में प्रसारित होती है। हम एस. के. अयंगर द्वारा प्रारंभिक बीसवीं शताब्दी में इतिहास लेखन हेतु इस ग्रंथ का एक स्रोत के रूप में किए गए इस्तेमाल पर विचार करने के बाद फ़िलिप वेगनर के अनुवाद पर विचार करेंगे।

कृष्णस्वामी अयंगर इसे कृष्णदेवराय के राज्य काल के वृत्तांत के रूप में ग्रहण करते हैं, जैसा कि एक समकालीन सूत्र ने विश्वनाथ नायक को इस ग्रंथ में ***स्थानपति*** के रूप में उल्लेख किया है। उनके द्वारा इस ग्रंथ के प्रति अपनाए गए उपागम और इसके उपयोग को निम्नलिखित ढंग से समझा जा सकता है:

1) अपेक्षाकृत अधिक 'ऐतिहासिक' तथा तथ्यात्मक खंडों को अलग कर उन्हें स्रोत-पुस्तकों में प्रकाशित किया गया।
2) विद्वानों ने इन ऐतिहासिक खंडों को सजग विश्लेषण और आलोचनात्मक व्याख्या के दायरे में रखकर देखा, और संबंधित आलेखों तथा लघु शोध-प्रबंधों की रचना की।
3) तेलुगु के जानकारों ने इस ग्रंथ को 'एक कविता', 'एक दरबारी कविता' तथा 'कृष्णदेवराय के रोज़नामचे' के रूप में देखा।
4) विश्वनाथ नायक की पहचान *नायक* व्यवस्था के संस्थापक तथा मदुरै के *नायक* के रूप में की गई।

महत्वपूर्ण बिन्दुः

1) '*रायवाचकमु*, प्रारम्भिक *नायक*-कालीन मदुरै में इतिहासलेखन संबंधी एक देशज दृष्टिकोण का स्पष्ट साक्ष्य प्रस्तुत करता है, उन रूपों को उजागर करते हुए जिनमें अतीत को चित्रित किया जा सकता था तथा उन विचारधारात्मक उपयोगों की ओर संकेत करते हुए जिनमें इस ज्ञान को प्रयोग किया जा सकता था' (वैगनर)।
2) 'अत्यधिक सामान्य शब्दों में कहें तो इस ग्रंथ का मेरा पाठ यह संकेत करता है कि *रायवाचकमु* में विजयनगर के अतीत के ज्ञान को मदुरै के *नायक* शासन की राजनीतिक वैधता के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करने के लिए गढ़ा और उपयोग में लाया गया था' (वैगनर)।

3) प्रथम भाग को 'टेक्स्ट एंड कॉंटेक्स्ट' (पाठ तथा संदर्भ) नाम दिया गया है, जहाँ वैगनर उन कारकों की चर्चा करते हैं जिनके आधार पर उन्होंने *नायक* दरबार को इस ग्रंथ के संदर्भ के रूप में पहचाना।

दूसरा खंड, अतीत को उपयोग में लाने की दृष्टि से विजयनगर के अतीत की प्रासंगिकता की चर्चा करता है। वैगनर कहते हैं कि, 'यद्यपि यह ग्रंथ प्रत्यक्ष रूप से इतिहास-सम्मत बनाने के इस विशिष्ट तर्क में हिस्सा नहीं लेते हैं कि *नायक* शासकों की वैधता कृष्णदेवराय के साथ विश्वनाथ के संबंध से उत्पन्न हुई है, यह एक विचारधारात्मक निष्पत्ति प्रस्तुत करता है, विजयनगर के इतिहास को राय के शासन की समाप्ति के बाद, जब *नायक* शासन की स्थापना हुई, के साथ समाप्त करते हुए यह मदुरै के शासकों के ऊपर अन्य ''उत्तराधिकारियों'' के अधिकारों को नकार कर देता है।'

वैगनर यह संकेत करते हैं कि वर्णात्मक रूप में यह ग्रंथ जो कार्य करने में असफल रहता है, वह इसकी आधारभूत विमर्श की संरचना में निहित संबंधों द्वारा प्रभावी रूप से सम्पन्न हो जाता है। 'वर्णन करने वाले के रूप में *स्थानपति* का रचनात्मक युक्ति के रूप में प्रयोग, कृष्णदेवराय के दरबार से जो कि इससे 80 वर्ष पूर्व मौजूद रहा था, काल्पनिक तथा अनैतिहासिक रूप से मदुरै के तत्कालीन अपने *नायक* स्वामी के पास ''प्रतिवेदन'' के माध्यम से, यह लेखक *नायकों* तथा विजयनगर के राजा के बीच एक निकट और निरंतर संबंध का संकेत करने में सफल रहा है।'

'विजय के नगर' अर्थात विजयनगर की सत्ता के बीज-यंत्र (Talisman) के रूप में वर्णन से इतर यह ग्रंथ चर्चा करता है 'कलियुग के राक्षसों' (उन पाँच मुस्लिम शक्तियों का जो विजयनगर को ध्वंस करने के लिए 1565 में एक साथ आ गए थे) की। दो पूरे अध्याय इन मुस्लिम राज्यों तथा तुर्क नरेशों पर केंद्रित हैं। अध्याय 4 उनकी राजधानियों तथा दरबार के सामान्य दस्तूर के विषय में जानकारी देता है, वहीं अध्याय 6 इन तीन राज्यों पर कृष्णदेवराय की विजयों का विशेष रूप से वर्णन करता है। वैगनर ने यह अनुभव किया है कि यह समझना महत्वपूर्ण है कि इस जटिल सांस्कृतिक विरोधाभास को लेखक के स्वयं के सांस्कृतिक परिवेश की अभिव्यक्ति के रूप में पहचाना जाए न कि पूर्व में कृष्णदेवराय के काल के परिवेश की अभिव्यक्ति के रूप में। इस ग्रंथ का इस्लाम-विरोधी प्रतिपक्षी तर्क सांस्कृतिक रूप से विनाशकारी कृत्य के उत्तरदायी कारकों के प्रति एक स्वाभाविक उदासीनता की अभिव्यक्ति है यह तो *तुरुकों* के साधारण व्यक्तिगत और सांस्कृतिक व्यवहार हैं जिन्हें आलोचना का शिकार बनाया गया है न कि इस्लाम धर्म के औपचारिक विश्वासों तथा रीतियों को। तुर्कों को परिभाषित करने के लिए इस लेखक ने तीन तरह की युक्तियों को अपनाया हैः

a) तुर्कों की तुलना धर्मविहीन होने के संदर्भ में हिंदू गजपतियों के साथ की गई है;

b) तुर्कों के राज्य को शत्रुतापूर्ण क्षेत्रों के रूप में बताया गया है; और

c) *अधार्मिक* 'तुर्कों'और *धार्मिक* राजाओं के बीच एक विरोध का भाव।

इस ग्रंथ का अवधारणात्मक परिदृश्य 'तीन सिंहासनों' (*मुदु सुरित्रासंतु*) के विचार के इर्द-गिर्द घूमता हैः *अश्वपति, गजपति* तथा *नरपति*। बीजापुर, अहमदनगर और गोलकुंडा के शासकों को *अश्वपति* कहा गया है।

वैगनर के शब्दों में, 'इस्लाम दक्षिण भारत में एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में लगभग तीन शताब्दियों से मौजूद रहा था जब *रायवाचकमु* की रचना हुई, लेकिन सोलहवीं शताब्दी के मध्य तक यह कभी भी पहले से मौजूद दक्षिण भारतीय सामाजिक व्यवस्था के लिए गंभीर ख़तरा नहीं बना था और अधिकांशतः इसको नज़रअंदाज किया गया था। दक्षिण भारत में साम्राज्यिक सत्ता के अंतिम प्रतीक और स्रोत का दक्खन की सल्तनतों द्वारा उन्मूलन कर दिए जाने के साथ यह स्पष्ट हो गया कि इस्लाम की यह अजनबी सांस्कृतिक व्यवस्था एक ऐसी परिघटना थी जिसका सीधे-सीधे सामना किया जाना था।'

8.7 *रायवाचकमु* का ग्रंथीय स्वरूप

रायवाचकमु मोटे तौर पर आठ विषय-वस्तुओं पर ध्यान केंद्रित करता हैः

1) यह *स्थानपति* द्वारा प्रस्तुत राय के विवेकपूर्ण संवाद हैं

2) विजयनगर की स्थापना

3) कृष्णराय की शिक्षा तथा राज्याभिषेक
4) कृष्णराय तथा तिम्मर्ष
5) तुर्कों के विवरण
6) गजपति राज्य का वृत्तांत
7) तुर्कों के साथ युद्ध
8) गजपतियों के विरुद्ध अभियान

उद्धरण

(a) युवा कुमारों, पढ़ो मेरे वचन,
और तुम्हें मिलेगा ज्ञान,
तैरो इन *शास्त्रों* के महासागरों में,
और चलना चाहिए तुम्हें *धर्म* मार्ग पर,
अपने स्वामियों की सेवा तथा शत्रुओं का संहार करते हुए।

(b) वह मनुष्य जो देवी-श्री को समर्पित जीवन जीता है,
गुणों की खान की तरह दीप्तिमान,
इस सिंहासन के अतिरिक्त और कहीं नहीं ढूँढता है शरण,
और साक्षात राजा से परे।

(c) संपत्ति को पाने को: प्रजा को करो संपन्न,
प्रजा को करने को संपन्नः
न्याय ही है मार्ग।
हे कृष्णराय!
कहते हैं वे न्याय
ही है राजाओं का कोष।

(d) जहाँ होता है साहस, रहेगी वहाँ लक्ष्मी,
और होती है जहाँ लक्ष्मी, विष्णु करते हैं वहाँ वास,
और जहाँ विराजते हैं विष्णु, वहाँ होता है *धर्म*,
और जहाँ *धर्म* होता है, निस्संदेह विजय मिलती है वहाँ।

(e) शत्रु बन जाते हैं मित्र,
विष निर्दोष जल,
और पाप हो जाते हैं पुण्य –
जगन्नाथ हों जब साथ तुम्हारे,
विपरीत स्थिति बन जाती हैं सहायक।

(f) हे कृष्णराय नर-सिंह!
दूर से ही कर देते हो तुम तुर्कों का वध
केवल अपने नाम के प्रताप से।
हे गजपति राजाओं के स्वामी!
तुम्हारी दृष्टि मात्र से
गजपति राज भाग उठे भय से।

8.8 सिंहावलोकन

जिस प्रकार ग्रंथ विभिन्न प्रकार से व्याख्या किए जाने के लिए मुक्त होते हैं, उसी प्रकार इनका विभिन्न प्रकार से पाठ किया जा सकता है। ग्रंथ की व्याख्या करते हुए उसके सामाजिक-सांस्कृतिक

परिवेश या ऐतिहासिक संदर्भ को ध्यान में रखना चाहिए। उदाहरण के लिए, किसी ग्रंथ में मौजूद कथाओं को राज्य तथा उसकी गतिशीलता में उभार, राजत्व के विचार में लाए गए परिवर्तनों, सामाजिक संरचना में आए बदलावों, इत्यादि के संदर्भ में समझना चाहिए। ये कथाएँ उत्तरी व दक्षिणी सांस्कृतिक तत्वों के बीच एकीकरण को भी प्रदर्शित करती हैं। इतिहासकार के लिए अभिलेखीय साक्ष्य किसी ग्रंथ के लिए ऐतिहासिक आधार प्रस्तुत करते हैं। ग्रंथ-आधारित अवशेष भारतीय संस्कृति के विश्लेषण के लिए भी उपयोगी विश्लेषणात्मक युक्तियाँ हैं। ग्रंथों का सरोकार मुख्यतः अभिव्यक्ति, सूचना तथा संचार के साथ होता है। इनकी निर्मिती, इनके घटक और इनमें निहित आशय इतिहासकार का ध्यान खींचते हैं। कोई ग्रंथ समय-विशेष के अनुरूप तथा अपने समय के दायरे से परे विस्तृत उद्देश्यों को उचित ठहराते हैं, और समय-विशेष से बँधे पहलू निरंतरता को प्रदर्शित करते हैं, वहीं समय-विशेष से स्वतंत्र पहलू परिवर्तनों को प्रकट करते हैं। दूसरे शब्दों में, इनकी आने वाली पीढ़ियों के लिए भी भौतिक प्रासंगिकता बनी रहती है।

आमुक्तमाल्यद, कृष्णदेव द्वारा रचित, श्रीविलिपुत्तुर की वैष्णव संत अंडाल/गोडा की कथा का वर्णन करती है। भगवान वेंकटेश्वर द्वारा कृष्णा जिले में मौजूद श्रीकाकुलम् में एक स्वप्न में प्रकट होकर इस कविता की रचना के निर्देश दिए गए थे। परंपरागत विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में हुए व्यापक विकास को प्रतिदिन के जीवन में उतारा जाता है। असाधारण यथार्थवाद और अतिरंजित कल्पना अपना प्रभाव दिखाते हैं, जब कवि पाकशाला से युद्ध क्षेत्र में, गणिकाओं के आवास क्षेत्र से मंदिर या राज महल की ओर मुड़ता है। राजनीति की यह नई समझ राज्य के अंतर्निहित विरोधाभासों और तनावों को सामने रखती है। पेड्डना और थिमन्ना की रचनाएँ साम्राज्य की राजधानी में अस्तित्व में रही मनो-सामाजिक दुनिया को और भी विस्तार से प्रस्तुत करती हैं।

श्रीनिवास रेड्डी की अंतर्दृष्टि ध्यान देने योग्य है। राजा के द्वारा देखा गया स्वप्न एक बहु-सांस्कृतिक यथार्थ है; यह काव्य संस्कृत की आलंकारिक कविता को तेलुगु के शब्द-विन्यास तथा भावों के साथ मिलाता है। ग्यारहवीं शताब्दी के *आंध्र महाभारतमु* से लेकर तेलुगु साहित्य *चंपू, पद्य ,गद्य तथा आद्य-काव्य* के रूप में विकसित हुआ और कृष्णदेवराय के अधीन तेलुगु साहित्य के इस स्वर्णिम युग में परिपक्वता को प्राप्त हुआ। *आमुक्तमाल्यद* को भक्ति-काव्य की श्रेणी में रखा जा सकता है जो . कृष्णदेवराय के साम्राज्य में प्रवाहित साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक धाराओं को परस्पर मिश्रित करता है। हम अध्येताओं की दृष्टि एक बार फिर से इस ओर खींचना चाहेंगे कि दक्षिण भारत में इतिहास स्वयं में एक विधा नहीं रही है और सोलहवीं शताब्दी में कोई एकल विधा को इतिहास लेखन हेतु नहीं स्वीकारा गया था। यहाँ इतिहासलेखन के रूप में ***इतिहास-पुराण*** की सामग्री पर रोमिला थापर के विचार को याद करना एक गहन अर्थ में प्रासंगिक रहेगा।

ए. के. वार्डर ने हमें उन कृतियों का एक सर्वेक्षण प्रस्तुत किया है जो अपने चरित्र में ऐतिहासिक स्वरूप की हैं। निकोलस डर्क्स ने पूर्व-औपनिवेशिक दक्षिण भारत के आख्यानों के संरचनागत नमूनों का अन्वेषण करते हुए नृजातीय-इतिहास के एक नए मॉडल को प्रस्तुत किया है।

टेक्सचर्स ऑफ़ टाइम (*राइटिंग हिस्ट्री ऑफ़ साउथ इंडिया* 1600-1800) के लेखक, *करणम्* इतिहास लेखन के विकास को दृष्टि में रखते हैं। उनके अनुसार सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दी में राजनीतिक इतिहास पर केंद्रित सुविख्यात ग्रंथों की रचना *करणम्*-लेखकों द्वारा की गई थी। फ़िलिप वैगनर का यह तर्क है कि *रायवाचकमु* का संबंध सत्रहवीं शताब्दी से प्रतीत होता है (न कि प्रारंभिक सोलहवीं शताब्दी से)। यह कृष्णदेवराय के शासन की घटनाओं का वर्णन करता है और *करणम्*-गद्य की शैली में लिखा गया है। इन तीनों लेखकों ने यह भी अनुभव किया है कि 'एक नए प्रकार के कुलीन जो दस्तावेज़ों के लिखित प्रसार हेतु समर्पित थे और सत्ता, राजनीति, तथा राज्य के स्वयं की मानकों पर किए गए विश्लेषण के आधार पर ऐतिहासिक स्मृति को व्यवस्थित करने के लिए उत्सुक थे, जिसने अंततः उन्हें उभरती हुई *नायक* व्यवस्था के भीतर एक सुनिश्चित स्थान प्रदान किया'। उन्होंने यह भी देखा है कि *करणम्* निचले स्तर से शुरू करने वाले व्यक्ति के लिए एक आदर्श था जो अपनी चतुराई तथा दक्षता से अंततः राजा और सम्राटों के कंधे से कंधा मिलाने में सफल हो जाता था। इसके उदाहरण गोलकुंडा राज्य में नियोगी ब्राह्मण अक्कन्ना तथा मदन्ना और अप्पाजी (सालुव-तिम्मा) हैं, जिन्होंने *रायवाचकमु* में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। इसकी आरंभिक प्रारंभिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:

मैंने कृष्णराय की कथा की रचना की है
ताकि विजयनगर की सच्ची घटनाओं –
सत्य शब्द जो मैंने सुने हैं विश्वसनीय लोगों से
वे स्पष्ट हो जाएँ सबके लिए।

इसका लिपिक (*रायसमुलु*) याद करता है
राज्य-कला के उन सिद्धांतों को जिन्हें नायुडु (अप्पाजी) ने सिखाया था राजा को
अगर वे पढ़ें और करें इनका अनुकरण
बनेंगे विशेषज्ञ
और अगर पढ़ें युवा जन इसे, उनके मस्तिष्क का होगा विस्तार
राज्य कला की विद्या में वे होंगे प्रवीण
और पा लेंगे मार्ग नष्ट करने का अपने शत्रुओं को।

लेखक को जो ज्ञात है उसका स्रोत वह है जो उसने विश्वसनीय लोगों से सुना है। पॉल वॉइन इसे 'परम्परा के रूप में इतिहास या वल्गेट (vulgate)' कहते हैं। ऐतिहासिक परम्परा जन्म लेती है न कि स्रोत सामग्रियों से गढ़ी जाती है। वैगनर इस ग्रंथ को *स्थानपति* के प्रतिवेदन के रूप में देखते हैं, इसके अंतिम वाक्य इस प्रकार हैं:

> और इसलिए, हे मेरे स्वामी, मैंने आपके लिए हर कुछ लिखा है जो हुआ है अब तक घटित और भेजता रहूँगा मैं उन सबका समाचार जो भी होता रहेगा भविष्य में। मैं अपने स्वामी के चरण कमलों में समर्पित हूँ और उनके आश्रय का आकाँक्षी हूँ।

रायवाचकमु किसी भी दृश्यात्मक ऐतिहासिक लेखन की शैली के रूप में श्रेणीबद्ध नहीं की जा सकती है। *वाचकमु* का शाब्दिक अर्थ राजा के 'समाचार/रिपोर्ट' या 'प्रतिवेदन, विवेकपूर्ण संवाद' ('tidings') है। इस ग्रंथ का लेखक ऐतिहासिक लेखन के संबंध में परंपरागत आख्यानों को नकार देता है और अपने वृत्तांत को एक राजनयिक द्वारा प्रस्तुत समाचार/रिपोर्ट के रूप में पेश करता है।

बोध प्रश्न-3

1) इतिहास के महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में *रायवाचकमु* की महत्ता बताइए।

....

....

....

2) क्या आप वैगनर के इस तर्क से सहमत हैं कि *रायवाचकमु* नायक वैधता के बदलते आधारों को रेखांकित करता है?

....

....

....

3) *रायवाचकमु* द्वारा 'कलियुग के राक्षसों' के विश्लेषण का समालोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

....

....

....

4) क्या आप वैगनर के इस मत से सहमत हैं कि भारतीय संस्कृति के विश्लेषण हेतु पाठात्मक अवशेष उपयोगी विश्लेषणात्मक युक्ति हैं?

....

....

....

8.9 सारांश

इस इकाई में हमने तेलुगु साहित्यिक ग्रंथों, विशेषकर *आमुक्तमाल्यद* तथा *रायवाचकमु*, के ऐतिहासिक महत्व पर चर्चा की है। *आमुक्तमाल्यद* न केवल कृष्णदेवराय के अभियानों पर प्रकाश डालता है बल्कि विजयनगर के राजाओं की वंशावली की निर्मिति तथा स्वरूप की प्रकृति तथा उसकी प्रासंगिकता का भी संकेत भी करता है। यह विजयनगर के राजाओं की धार्मिक विचार-दृष्टि के साथ ही उस काल के साहित्यिक तथा सांस्कृतिक परिवेश पर भी रोशनी डालता है।

अन्य तेलुगु ग्रंथ जिसका विश्लेषण किया गया है वह *रायवाचकमु* है, जो *नायकों* के अपने विजयनगर के संरक्षक राज्य से संबंध को उजागर करता है। यह संकेत करता है कि किस प्रकार यद्यपि *नायकों* ने विजयनगर के शासकों का अपने अधिराज के रूप में सम्मान करना जारी रखा, विजयनगर राज्य के पतन के साथ *नायक* शासकों ने अपने समकालीन पतनोन्मुख विजयनगर शासक के बजाय कृष्णदेवराय के गौरवशाली शासन की प्रशंसा को प्रमुखता दी। यह ग्रंथ नए उभरते सत्ता संबंधों का विश्लेषण करने के लिए ऐतिहासिक स्मृति का उपयोग करता है।

8.10 शब्दावली

अनाल्स — *अनाल्स*, लूसियाँ फ़ेब्र तथा मार्क ब्लॉक द्वारा स्थापित एक फ्रांसीसी पत्रिका थी, जिसके नाम के आधार पर इतिहास के *अनाल्स* स्कूल का नाम रखा गया था। *अनाल्स* इतिहासलेखन ने 'समग्र इतिहास' तथा अंतर-विषयक दृष्टिकोण (interdisciplinary approach) का समर्थन किया, इस प्रकार इतिहासलेखन के नए रूप को प्रोत्साहित किया। उन्होंने सूक्ष्म-अध्ययनों (micro-studies) पर बल दिया और मनोविज्ञानात्मक (मनोवृत्तियों के इतिहास) तथा सांस्कृतिक तत्वों को इसमें स्थान दिया

चंपू — एक साहित्यिक शैली जिसमें गद्य तथा पद्य का मिश्रण होता है

चरित — *चरित* एक प्रकार का वर्णन-परक लेखन है जिसमें किसी ऐतिहासिक या काल्पनिक राजा/नायक के जीवन/साहसिक कार्यों तथा उपलब्धियों पर ध्यान केंद्रित किया जाता था। मोटे तौर पर ये राजदरबार से संबंधित होते थे

इतिहास-पुराण — *आख्यान*, इतिहास, अतीत की घटनाओं तथा *पुराण* (पुरातन कथाओं) पर आधारित प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक परम्परा (विस्तार से जानने के लिए प्रस्तुत पाठ्यक्रम की **इकाई 2** देखें)

दानस्तुति — शब्दशः, 'दान की प्रशंसा में'; इन मंत्रों की रचना दान ग्रहण करने वाले, जो मुख्यतः पुरोहित होते थे, द्वारा दानदाता की प्रशंसा में की गई थी

धर्मशास्त्र — प्राचीन संस्कृत ग्रंथ जो सदाचार तथा नीतिसम्मत सिद्धांतों (*धर्म*) पर विचार करते थे। सर्वप्रमुख धर्मशास्त्रीय ग्रंथ थेः *मनुस्मृति*, *याज्ञवल्क्यस्मृति* तथा *नारदस्मृति*

देसभाषा — क्षेत्रीय/स्थानीय भाषाएँ

***करणम्* गद्य शैली** — *करणम्* शासन-कला के ग्रंथों को लिखते थे, इतिवृत्तांत लेखकों के विपरीत *करणमों* को इतिहास तथा दर्शन के लेखन में अधिक स्वायत्ता प्राप्त थी। वे अपने दृष्टिकोण में 'धर्मनिरपेक्ष' थे

***कथा* परम्परा** — कथावाचन/इस प्रकार के अनुष्ठान का निष्पादन। इसमें अक्सर एक पुरोहित *कथावाचक/व्यास* धार्मिक ग्रंथों से कथाओं को सुनाता था, जिसके बाद इन पर टिप्पणी या प्रवचन दिए जाते थे

मार्गी-देसी शैली	शास्त्रीय तथा लोक/स्थानीय शैलियों का मिश्रण
मेटाहिस्ट्री (Metahistory)	इस संकल्पना की अभिव्यक्ति हेडेन व्हाइट ने अपनी कृति *मेटाहिस्ट्रीः द हिस्टॉरिकल इमैज़िनेशन इन नाइंटीन्थ सेंचुरी यूरोप* में की है। व्हाइट का तर्क है कि इतिहास को केवल तथ्यों तक सीमित नहीं होना चाहिए बल्कि किसी ऐतिहासिक ग्रंथ के गहन संरचनागत संदर्भो और अर्थों पर ध्यान देना आवश्यक है
नायक	मूल रूप से विजयनगर साम्राज्य के प्रांतों के सैन्य गवर्नर, बाद में विजयनगर शक्ति के पराभव के बाद, तालीकोटा युद्ध (1565) के पश्चात्, कई नायकों ने स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर लिया
प्रबंध	आलंकारिक लेखन, विवरणात्मक तथा आलंकारिक शैली में लिखा गया काव्य
प्रशस्ति	अभिलेख रूप में लिखा गया प्रशंसापूर्ण काव्य; मुख्यतः राजदरबार से संबंधित। इन्हें मुख्यतः आलंकारिक शैली में लिखा गया था। सुविख्यात *प्रशस्तियों* में समुद्रगुप्त की *प्रयाग प्रशस्ति* है
स्थानपति	विजयनगर दरबार में *नायकों* के प्रतिनिधि
तत आचार्य	*राजगुरु*; श्री वैष्णव मत के वेंकट तत आचार्य कृष्णदेवराय के *राजगुरु* थे
वंशावली	पीढ़ीगत अनुक्रम

8.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें भाग 8.1
2) देखें भाग 8.1
3) देखें भाग 8.1
4) देखें भाग 8.2

बोध प्रश्न-2

1) देखें भाग 8.4
2) देखें भाग 8.4
3) देखें भाग 8.5
4) देखें उप-भाग 8.5.2
5) देखें उप-भाग 8.5.4

बोध प्रश्न-3

1) देखें भाग 8.6
2) देखें भाग 8.6
3) देखें भाग 8.6
4) देखें भाग 8.5, 8.6, 8.7, 8.8

8.12 संदर्भ ग्रंथ

जॉनसन, बारबरा, (1981) *रोलाँ बार्थ – क्रिटिक्ल ऐसेज़* (शिकागोः यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस).

हंट, लिन, (संपा.) (1989) द *न्यू कल्चरल हिस्ट्री* (कैलिफ़ोर्नियाः कैलिफ़ोर्निया यूनिवर्सिटी प्रेस).

राव, वेलचेरु नारायण, (2017) *टेक्स्ट्स एंड ट्रडिशंज़ इन साउथ इंडिया* (न्यूयॉर्कः सूनी प्रेस).

राव, वेलचेरु नारायण, डी. शुलमैन और एस. सुब्रह्मण्यम, (2003) *टेक्स्चर्ज़ ऑफ़ टाइमः राइटिंग हिस्ट्री इन साउथ इंडिया 1600-1800* (दिल्लीः पर्मानेंट ब्लैक).

रेड्डी, श्रीनिवास, (2010) *गिवर ऑफ़ द वॉर्न गार्लैंडः कृणदेवरायास आमुक्तमाल्यद* (दिल्लीः इंडिया पेंग्विन क्लासिक्स).

स्टोकर, वेलोवि, (2016) *सिटी ऑफ़ विक्ट्री* (कैलिफ़ोर्नियाः कैलिफ़ोर्निया यूनिवर्सिटी प्रेस).

थापर, रोमिला, (1986) 'सोसायटी एंड हिस्टॉरिकल कॉन्सिएशनेसः द इतिहास-पुराण ट्रडिशंज़', एस. भट्टाचार्य तथा रोमिला थापर (संपा.), *सिचूएटिंग इंडियन हिस्ट्री* (दिल्लीः ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस), पृ. 353-83.

थापर, रोमिला, (1995) 'हिस्टॉरिकल कॉन्सिएशनेस इन अर्ली इंडिया', थापर, आर., (संपा.) (2000) *कल्चरल पास्ट्सः एसेज़ इन अर्ली इंडियन हिस्ट्री* (दिल्लीः ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस), पृ. 155-172.

टिलशेर, स्टेफ़ान, माइकेल मायर, रूथ वोडक, और ईवा वेट्टर, (संपा.) (2000) *मेथड्ज़ ऑफ़ टेक्स्ट्स एंड डिस्कोर्स अनालिसिस* (ब्रायन जेनर द्वारा अनुवादित) (लंदनः सेज़ पब्लिकेशन).

वैगनर, फ़िलिप, (1993) *टाइडिंग्ज़ ऑफ़ द किंगः अ ट्रॉन्स्लेशन एंड एथनोहिस्टॉरिकल अनालिसिस ऑफ़ द रायवाचकमु* (हवाईः यूनिवर्सिटी ऑफ़ हवाई प्रेस).

व्हाइट, हेडेन, (1973) *मेटाहिस्ट्री – द हिस्टॉरिकल इमैजिनेशन इन नाइंटीन्थ सेंचरी यूरोप* (बाल्टीमोरः जॉन हॉप्किन्स यूनिवर्सिटी प्रेस).

व्हाइट, हेडेन, (1978) *ट्रापिक्स ऑफ़ डिस्कोर्सः एसेज़ इन कल्चरल क्रिटिसिज़म* (बाल्टीमोरः जॉन हॉप्किन्स यूनिवर्सिटी प्रेस).

8.13 शैक्षणिक वीडियो

श्रीनिवास रेड्डी ऑन रायः कृष्णदेवराय ऑफ़ विजयनगर। एलएचआई बुक क्लब
https://www.youtube.com/watch?v=AbKPSflUfSw

रायाः कृष्णदेवराय ऑफ़ विजयनगर
https://www.youtube.com/watch?v=Q5ixaV6omIE

कृष्णदेवराय ऑफ़ विजयनगरः ए ग्लोबल लीडर – टॉक बाय डॉ. श्रीनिवास रेड्डी
https://www.youtube.com/watch?v=cyzHY8x-no

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY